UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176321

UNIVERSAL
LIBRARY

ईशदूत ईसा

स्वामी विवेकानन्द लिखित

..रामकृष्ण आश्रम,
नागपुर, मध्यप्रान्त
१९५१

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H232.8 V85I Accession No. H1078

Author विवेकानन्द, स्वामी.

Title ईशादूत ईसा. 1949.

This book should be returned on or before the date last marked be'

मिश्रित

ईशदूत ईसा

स्वामी विवेकानन्द

अनुवादक – प्राध्यापक श्री हरिवल्लभ जोशी,
एम. ए.

श्रीरामकृष्ण आश्रम,
नागपुर, मध्यप्रान्त

अक्टूबर १९४९]   [मूल्य ।=)

प्रकाशक—
स्वामी भास्करेश्वरानन्द,
अध्यक्ष, श्रीरामकृष्ण आश्रम,
धन्तोली, नागपुर, मध्यप्रान्त

Checked 1909

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थ-माला

पुष्प ४४ वाँ

(श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर द्वारा सर्वाधिकार स्वरक्षित)

मुद्रक—
मेलाराम खन्ना ॲण्ड सन्स,
ऑल इंडिया रिपोर्टर प्रेस,
काँग्रेस नगर, नागपुर

वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक में स्वामी विवेकानन्दजी ने महात्मा ईसा के जीवन-चरित्र की विवेचना प्राच्य दृष्टिकोण से बड़ी सुंदर रीति से की है। इस महान अवतार की जीवनी की इस प्रकार की मीमांसा अपने ढंग की अनोखी है। निःसंकोच कहा जासकता है कि महात्मा ईसा ने ईश्वरलाभ, शान्ति एवं शुद्धता का जो दैवी संदेश दिया है वह विश्व-शान्ति स्थापित करने में अपना ही स्थान रखेगा। विशेषकर साधकों के लिये इस महान आत्मा की आध्यात्मिक शिक्षाएँ बड़ी ही हितकर होंगी।

प्राध्यापक श्री हरिवल्लभ जोशी, एम. ए., के हम बड़े आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक का अनुवाद बड़ी सफलतापूर्वक किया है।

श्री पं. शुकदेव प्रसादजी तिवारी (श्री विनयमोहन शर्मा), एम. ए., एल-एल. बी., प्राध्यापक, नागपुर महाविद्यालय, के भी हम बड़े आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक के कार्य में हमें उपयुक्त सूचनाएँ दी हैं।

श्री पं. डा. विद्याभास्करजी शुक्ल, एम. एस-सी., पी-एच. डी., प्राध्यापक, कालेज आफ साइन्स, नागपुर को भी हम धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इस पुस्तक के प्रूफ-संशोधन में हमें बहुमूल्य सहायता दी है।

नागपुर, — प्रकाशक

ता. १-११-१९४९

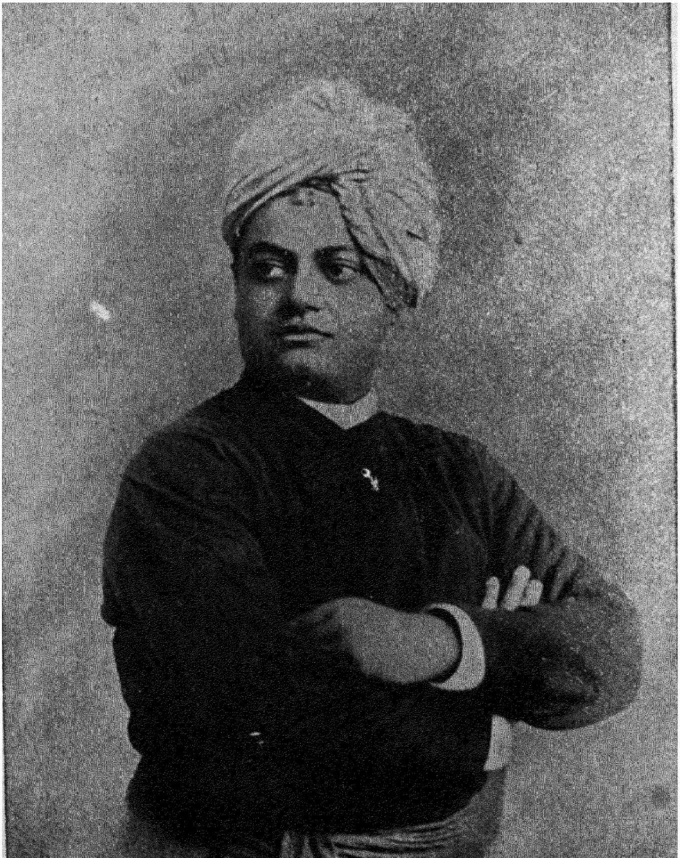

स्वामी विवेकानन्द

ईशदूत ईसा

सागर में एक ओर जहाँ उत्तुङ्ग तरंगों का नर्तन होता है दूसरी ओर एक अथाह खाई भी होती है। उच्च तरंग उठती है और विलीन होती है। फिर एक प्रबलतर तरंग उठती है, मुहूर्तमात्र में उसका पतन होता है और पुन: उत्थान भी। इसी प्रकार तरंग पर तरंग सागर के वक्ष पर अग्रसर होती रहती है। विश्व के घटना-प्रवाह में भी निरन्तर इसी प्रकार का उत्थान और पतन होता रहता है किन्तु हमारा ध्यान केवल उत्थान की ओर जाता है, पतन का विस्मरण होजाता है। पर विश्व की गति के लिये दोनों ही आवश्यक हैं—दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। यही विश्व-प्रवाह की रीति है।

हमारे मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जगत में, सर्वत्र यही क्रम-गति, यही उत्थान-पतन चल रहा है। उसी प्रकार विश्व-प्रवाह में उच्चतम कार्य, उदार आदर्श, समय समय पर जन्म लेते हैं व जनसमूह की दृष्टि आकर्षित कर विलीन होजाते हैं, मानो वे अतीत के भावों का परिपाक कर रहे हों — मानो प्राचीन आदर्शों का रोमन्थन करने को वे अदृश्य होगये हों, जिसमें ये भाव-समूह, ये आदर्श, समाज में अपना योग्य स्थान पा लें, समाज के एक एक अंग के रुधिरबिन्दु में उनका प्रवेश होजाय, पुन: एक प्रबल और उच्चतर उत्थान के लिये शक्तिसंचय करलें।

दुनिया के राष्ट्रों के इतिहास में भी यही गति दृग्गोचर होती

है। इस ज्योतिर्मय आत्मा का, इस ईशदूत का, जिसकी जीवन-गाथा पर आज विवेचन किया जायगा, अपनी जाति के इतिहास के एक ऐसे युग में आविर्भाव हुआ था जिसे पतन-काल कहने में अत्युक्ति न होगी। उनके उपदेश और कार्यकलाप के किञ्चित् लिपिबद्ध विवेचनों की हमें यत्र तत्र कुछ झलक मात्र ही मिलती है; यह सच ही कहा गया है कि उस महापुरुष के उपदेश और कर्मवीरता की सब गाथायें लिपिबद्ध होने पर सारा विश्व उनसे व्याप्त हो जायगा। उनके धर्म-प्रचार-काल के तीन ही वर्षों में मानो एक पूर्ण युग की घटनायें एवं उसका इतिहास सूक्ष्मरूप से निहित था, जिसके प्रकट होने—स्थूल रूप धारण करने में पूरी उन्नीस शताब्दियाँ लग गई हैं, और न जाने और कितने वर्ष लगेंगे। मेरे और तुम्हारे जैसे क्षुद्र जन केवल क्षुद्र शक्ति के आधार हैं। कुछ क्षण, कुछ घटिकायें, कतिपय मास, ज्यादा से ज्यादा कुछ वर्ष बस—ये उस क्षुद्र शक्ति के व्यय के लिये, उसके पूर्ण प्रसरण और अधिकतम विकास के लिये पर्याप्त हैं और उसके बाद हम पुनः उस अनन्त शक्ति-स्रोत में विलीन होजाते हैं। किन्तु इस विशाल शक्ति-पुञ्ज को देखिये। शताब्दियों और सहस्राब्दों के बीतने पर भी, उसकी महान शक्ति पूर्ण रूप से प्रकट नहीं हो पाई है, उसका पूर्ण प्रसार व विकास नहीं हो पाया है। बीतते हुये युगों के साथ उसमें नूतन-शक्ति का संचार होता जारहा है—वह प्रबल से प्रबलतर होता जारहा है।

आज हम ईसा की जीवनी में संपूर्ण अतीत का इतिहास देखते हैं। वैसे तो हर सामान्य मानव का जीवन भी उसके अतीत भाव-

समूह का इतिहास ही है। समूची जाति का यह अतीत भावसमूह प्रत्येक व्यक्ति में आनुवंशिकता, वातावरण, शिक्षा व पूर्व जन्म के संस्कारों द्वारा आता ही रहता है। एक प्रकार से हमारे इस गतिमान नक्षत्र, इस सारे जगत की इतिकथा हरएक आत्मा पर सूक्ष्म रूप से अंकित है। किन्तु हम उस अनन्त अतीत के एक क्षुद्र कार्य और फल के अतिरिक्त और क्या है? विश्व के प्रबल प्रवाह में अनिवार्यतया अविराम रूप से अग्रसर होनेवाली, निश्चेष्ट, असमर्थ, छोटी छोटी उर्मियों के अतिरिक्त और हम क्या है? मैं और तुम जलप्रवाह में केवल क्षुद्र बुद्बुद हैं। विश्व-व्यापार के विशाल प्रवाह में कई विशाल तरंगें हैं। मेरे और तुम्हारे जैसे क्षुद्र जनों में अतीत के भाव-समुदाय के अल्पांश का ही प्रतिनिधित्व होता है। किन्तु ऐसे शक्तिसम्पन्न महापुरुष भी होते हैं, जो प्राय: संपूर्ण अतीत के साकार स्वरूप होते हैं और अपने दीर्घ प्रसारित बाहुओं से सुदूर भविष्य की सीमाओं को भी स्पर्श करते रहते है। ये महापुरुष मानव जाति के उन्नति-पथ पर यत्र तत्र स्थापित मार्गनिदर्शक स्तम्भों के समान है। जिनके चिर प्रकाश की छाया से पृथ्वी आच्छन्न रहती है वे यथार्थ में महान है, अमर, अनन्त और अविनाशी हैं। इसी महापुरुष ने कहा है : किसी भी व्यक्ति ने ईश्वर-पुत्र के माध्यम बिना ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया है। और यह कथन अक्षरश: सत्य है। ईश्वर-तनय के अतिरिक्त ईश्वर को और हम कहाँ देखेंगे? यह सच है कि मैं और तुम, हममें से निर्धन से भी निर्धन और हीन से भी हीन व्यक्ति में भी परमेश्वर विद्यमान है, उनका प्रतिबिम्ब मौजूद है।

प्रकाश की गति सर्वत्र है, उसका स्पन्दन सर्वव्यापी है, किन्तु हमें उसे देखने के लिये दीप-शिखा की आवश्यकता होती है। जगत का सर्वव्यापी ईश भी तब तक दृष्टिगोचर नहीं होता, जब तक ये महान शक्तिशाली दीपक, ये ईशदूत, ये उसके सन्देशवाहक और अवतार, ये नर-नारायण उसे अपने में प्रतिबिम्बित नहीं करते।

हम सब को ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास है, फिर भी हम उसे देख नहीं पाते, उसे नहीं समझ पाते। आत्मप्रकाश के इस महान संदेशवाहक की जीवन-कथा लीजिये, ईश्वर की जो उच्चतम भावना तुमने हृदय में धारण की है, उससे उसके चरित्र की तुलना करो और तुम्हें प्रतीत होगा कि इन जीवित और जाज्वल्यमान आदर्श महापुरुषों के चरित्र की अपेक्षा आपकी भावनाओं का ईश्वर अनेकांश में हीन है, ईश्वर के अवतार का चरित्र आपके कल्पित ईश्वर की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च है। आदर्श के विग्रह स्वरूप इन महापुरुषों ने ईश्वर की साक्षात् उपलब्धि कर, अपने महान जीवन का जो आदर्श, जो दृष्टान्त हमारे सम्मुख रखा है, ईश्वरत्व की उससे उच्च भावना धारण करना असम्भव है। इसलिये यदि कोई इनकी ईश्वर के समान अर्चना करने लगे, तो इसमें क्या अनौचित्य है? इन नर-नारायणों के चरणाम्बुजों में लुण्ठित हो, यदि कोई उनकी भूमि पर अवतीर्ण ईश्वर के समान पूजा करने लगे तो क्या पाप है? यदि उनका जीवन, हमारे ईश्वरत्व के उच्चतम आदर्श से भी उच्च है तो इसमें क्या दोष? दोष की बात तो दूर रही, ईश्वरोपासना की केवल यही एक विधि संभव है। आप कितना ही प्रयत्न करें, पुनः

पुन: सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों पर मनन करें, पर जब तक आप इस मानवजगत में, मानवदेह में अवस्थित हैं, नरभावापन्न हैं तब तक आपका विश्व मानवी होगा, आपका धर्म मानवी होगा और आपका ईश्वर भी मानवी होगा। उसका अन्यथा होना असंभव है। कौन इतना निर्बुद्धि है, जो प्रत्यक्ष साक्षात् वस्तु का ग्रहण न कर, कल्पनाओं के पीछे दौड़ता फिरेगा, उन भावनाओं के साक्षात्कार के लिये खाक छानता फिरेगा — जिनका धारण करना भी कठिन है, और जिन तक किसी स्थूल माध्यम की सहायता बिना पहुँचना सर्वथा असंभव है? इसीलिये ईश्वर के इन अवतारों की सभी युगों व सभी देशों में पूजा होती रही है।

अब हम यहूदियों के पैगम्बर ईसामसीह के जीवन का कुछ विवेचन करेंगे। विविध जातियों के इतिहास में हमें उत्थान और पतन का क्रम दृष्टिगत होता है। ईसा का जन्म एक ऐसे युग में हुआ, जिसे हम यहूदी जाति का पतनकाल कह सकते हैं — एक ऐसा युग जब व्यक्तियों की विचार-शक्ति कुछ शिथिल होजाती है और वे अतीत के सपनों के नीड़ में विश्राम करने लगते हैं, जीवन-प्रवाह स्थिर होकर उसमें सड़ाँध पैदा होने लगती है, विचार संकुचित होने लगते हैं, जीवन व जगत की महान समस्यायें दृष्टि से ओझल होजाती हैं, जाति ने पूर्वकाल में जो उपार्जित किया है, उसीका क्लान्त होकर वह चर्वण और रक्षण करती रहती है। सारांश में यह अवस्था दो तरंगों के उत्थान के बीच की पतनावस्था के समान ही थी। ध्यान रहे कि मैं इस अवस्था में कोई दोष नहीं देखता,

क्योंकि यदि यहूदि जाति के इतिहास में यह अवस्था न आती, तो इसके परवर्ती उत्थान की—जिसका नाजरथवासी ईसा मूर्त-स्वरूप थे—कोई संभावना न रहती। माना कि फेरिसी व सेड्युसी लोग कपटशील थे, अनैतिक व अधर्माचारी थे, ऐसे कार्यों में रत रहते थे जो उन्हें नहीं करने चाहिये थे, किन्तु उनके इन्हीं कार्यों की फलोपपत्ति ईसा का महान व दिव्य जीवन है। एक छोर पर फेरिसी व सेडयुसी लोगों ने जिस शक्ति का निर्माण किया वही दूसरे छोर पर नाजरथ निवासी महामनीषी ईसा के रूप में प्रकट हुई।

कई बार बाह्य धार्मिक क्रियाकलापों, रीतियों व छोटे मोटे विवरणों का उपहास किया जाता है, किन्तु उनमें धर्म-जीवन की शक्ति निहित रहती है। कई बार प्रगति-पथ पर अग्रसर होते होते धर्म-शक्ति का ह्रास भी होजाता है। देखा जाता है कि उदारमना व्यक्ति की अपेक्षा धर्मान्ध व्यक्ति अधिक प्रबल होते हैं। इसलिये धर्मान्ध पुरुष में भी एक गुण है: वह अपने में महान शक्ति-राशि संचय करने की क्षमता रखते हैं।

व्यक्ति के समान जाति में भी इसी प्रकार शक्ति-संचय होता है। चारों ओर बाह्य शत्रुओं से घिरी हुई, रोमन जाति के पराक्रम से प्रताड़ित हो एक केन्द्र में सन्निबद्ध, बौद्धिक-जगत में यूनान, फारस व भारत से आने वाली भावलहरियों से विताड़ित, यह जाति प्रबल मानसिक, शारीरिक व नैतिक शक्तियों से परिवेष्टित होने के कारण, प्रचण्ड स्वाभाविक व स्थितिशील शक्ति का आगार होगई जो अब भी उसके वंशधरों में लुप्त नहीं हुई है। बाध्य होकर इस जाति

को अपनी संपूर्ण शक्ति जेरूसलेम व यहूदी धर्म पर केन्द्रित करनी पड़ी, और शक्ति की यह प्रकृति है कि एक बार संचित होने पर फिर वह एक स्थान में नहीं रह सकती। वह अपना प्रसार कर अपने को निःशेष करने लगती है। पृथ्वी में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो दीर्घकाल तक एक सीमित स्थान में बन्दी बनाई जा सके भविष्य में प्रसार का अवसर दिये बिना उसे एक स्थान में संकुचित कर रखना असंभव है। यहूदी जाति की यह केन्द्रित शक्ति भी परवर्ती युग में क्रिश्चन धर्म के उत्थान के रूप में प्रकट हुई। विभिन्न दिशाओं से आने वाले क्षुद्र स्रोत मिल मिल कर एक स्रोतस्वती का निर्माण करते हैं और क्रमशः एक तरंगशालिनी, वेगवती, महानदी बन जाती है। इसी विशाल प्रवाह की एक उच्च तरंग के शिखर पर हम नाजरथ निवासी ईसा को अधिष्ठित पाते हैं। इस प्रकार सभी महापुरुष अपने युग के घटना-चक्र के फल या कार्य-स्वरूप हैं, उनकी जाति का अतीत ही उनका निर्माण करता है। किन्तु वे स्वयं अपनी जाति के भविष्य का सृजन करते हैं। आज का कार्य अपने पूर्ववर्ती घटनासमूह का फल और परवर्ती घटनाओं का कारण है। हमारे आलोच्य महापुरुष पर भी यही सिद्धान्त घटता है। ईशदूत ईसामसीह उस सब का साकार स्वरूप है—जो उसकी जाति में श्रेष्ठ और उच्च है, जाति के उस जीवन-दर्शन का मूर्तरूप है जिसकी रक्षा के लिये जाति ने शत शत युगों तक संघर्ष किया है और वह स्वयं केवल अपनी ही जाति के नहीं, अपितु असंख्य जातियों के भावी जीवन का शक्ति-स्रोत है।

और एक बात हमें यहाँ स्मरण रखनी चाहिये । इस महान पैगम्बर पर मेरा विवेचन पौर्वात्य दृष्टिकोण से होगा। कई बार आप भी यह भूल जाते हैं कि ईसा प्राच्यदेशीय थे । ईसा को नील चक्षुओं व पीत केशों के साथ चित्रित करने के आप के प्रयत्नों के बावजूद भी ईसा की प्राच्यदेशीयता में कोई अंतर नहीं आता । बाइबल में प्रयुक्त उपमा व रूपक, उसमें वर्णित स्थान व दृश्य, उसका दृष्टिकोण उसका रहस्यमय काव्य व चरित्र-चित्रण, उसके प्रतीक सब इसी बात का ही तो संकेत करते हैं। उसमें वर्णित नीला चमकीला आकाश, ग्रीष्म का उत्ताप, प्रखर रवि, तृषार्त नरनारी व खग-मृग, सिर पर घड़े ले जल भरने, कुंओं पर जाते हुए नरनारिगण, किसान, मेषपाल व कृषिकार्य, पनचक्की व उसके समीपवर्ती सरोवरादि— ये सब केवल एशिया ही में तो दिखाई पड़ते हैं ।

एशिया की आवाज़ सदैव धर्म की आवाज़ रही है और यूरोप सदैव राजनीति की भाषा बोलता रहा है। अपने अपने क्षेत्र में दोनों ही महान हैं। यूरोप की यह बोली प्राचीन यूनानी विचारों की प्रतिध्वनि मात्र है । यूनानी अपने समाज को ही सर्वस्व व सर्वोच्च मानते थे। उनकी दृष्टि में अन्य सब बर्बर और असभ्य थे, उनके सिवाय इतरों को जीवित रहने का अधिकार नहीं था । उनके मत में यूनानी जो करते थे वही कर्तव्य था, वही श्रेष्ठ था। संसार में अन्य जो कुछ है, वह गलत है और उसको नष्ट कर देना चाहिये । इसलिये मानवता के प्रति उनकी सहानुभूति एकान्त सीमाबद्ध है, वे एकान्त स्वाभाविक हैं, और उनकी सभ्यता कलाकौशलमय है । यूनानी मस्तिष्क

संपूर्णतया इहलोक का चिन्तन करता है, उसी में निवास करता है। उसे अन्य-लौकिक स्वप्नों से प्रेम नहीं है, उसका काव्य भी इसी व्यवहारिक जगत से प्रेरणा पाता है। उनके देवता भी मानव रूप, मानव-प्रकृतिपूर्ण, मानवों के साधारण सुख-दुःख का अनुभव करने वाले हैं।

यूनानी को सौन्दर्य से प्यार है पर वह ऐहिक सौन्दर्य है—प्रकृति की रमणीकता है। उसकी सौन्दर्योपासना केवल शैलराजि, शुभ्र हिमराशि, सरल शिशुओं से पुष्पों के सौन्दर्य, बाह्य अवयवों व आकृतियों के सौन्दर्य, मानवी मुख व उसकी सुघड़ता—सुडौलता के सौन्दर्य तक ही सीमित थी। यही यूनान परवर्ती यूरोप का आचार्य था, और इसलिये आज के यूरोप में उठनेवाले नित नये वाद व विचार, आज के यूरोप की वाणी यूनान के अतीत की एक प्रतिध्वनि मात्र है।

एशिया की आवाज़ इससे भिन्न है, एशियावासियों की प्रकृति कुछ और है। उस प्रकाण्ड भूमिखण्ड, उस विशाल महादेश की ज़रा कल्पना तो कीजिये जिसके अभ्रंकश शैल-शिखर बादलों को चीरकर आकाश की नीलिमा को चूमते रहते हैं; जिसकी अंक में एक ओर अनन्त बालुकाराशि सोई पड़ी है जिसमें एक बूँद पानी मिलना भी असंभव है, कोसों तक एक हरित-तृण के दर्शन होना भी दुर्लभ है, और दूसरी ओर भूमि किसी असूर्यम्पश्या राजकन्यका की भाँति हरित-वनराजि का अनन्त अवगुण्ठन धारण किये है, जहाँ विशाल वेगवती महानदियाँ अठखेलियाँ करती समुद्र की ओर बहती

जाती हैं चतुर्दिक प्राकृतिक सौन्दर्य से परिवेष्टित एशियावासियों की सौन्दर्य व महानता की कल्पनायें बिल्कुल विपरीत दिशा में अग्रसर हुई हैं। वे अन्तर्दृष्टिपरायण होगये हैं। उनमें भी प्राकृतिक सौन्दर्य के लिये वही पिपासा है, शक्ति के लिये वही भूख है। यूनानियों के समान उनमें भी इतरों को असभ्य व बर्बर समझने की प्रवृत्ति है, उन्नति की आकांक्षा है। किन्तु उनके इन भावों की परिधि विशाल और विस्तृत है। एशिया में आज भी, जन्म, वर्ण या भाषा के भेद पर जातियों का संगठन आधारित नहीं है। जातियाँ धर्म पर आधारित हैं। इस प्रकार सब क्रिश्चनों की जाति एक होगी, सब मुसलमान एक ही जाति के होंगे और इसी प्रकार सब बौद्ध अपने को एक ही जाति का मानते हैं। चीन निवासी एक बौद्ध फारस में रहनेवाले दूसरे बौद्ध को अपना भाई मानता है, अपनी ही जाति का अंग समझता है—केवल इसीलिये कि उन दोनों का धर्म एक है। धर्म ही मानवता को एक सूत्र में बाँधता है, वही एक सम्मिलन-भूमि है जहाँ विविध देशों के लोग अपने भेदभाव भूलकर परस्पर गले लगते हैं। और फिर इसी कारण एशियावासी, ये प्राची के निवासी जन्मजात स्वप्नद्रष्टा होते हैं, स्थूल जगत की अपेक्षा उसके परे किसी सूक्ष्म जगत का चिन्तन करना अधिक पसंद करते हैं। जलप्रपातों पर नाचती हुई लहरियाँ, खगकुल का कलरव, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र-तारा-ग्रह-संकुला रात्रि, निसर्ग, आदि का सौन्दर्य उन्हें मनोरम प्रतीत होता है—इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु प्राच्य मन के लिये यह पर्याप्त नहीं है। वह वर्तमान और इहलोक के धरातल को छोड़,

किसी अतीत के सपनों का सृजन करता है, किसी अतीन्द्रिय सौन्दर्य को खोजता है। वर्तमान, प्रत्यक्ष और दृश्य जगत मानो उसके लिये कुछ नहीं है। युगों से प्राची कई जातियों के जीवन का रंगमंच रही है, उसने न मालूम नियति-चक्र के कितने परिवर्तन देखे हैं। उसने एक राज्य के बाद दूसरे राज्य को, एक साम्राज्य के बाद दूसरे साम्राज्य को अभ्युदित होते, उठते और फिर गिरकर मिट्टी में मिलते देखा है; मानवीय शक्ति, प्रभुत्व, ऐश्वर्य और धनराशि को अपने कदमों में लुढ़कते और निछावर होते देखा है। अनन्त विद्या, असीम शक्ति व अनेकानेक साम्राज्यों की विशाल समाधिभूमि—यह है प्राच्य भूमि का परिचय। कोई आश्चर्य नहीं यदि प्राची के निवासी इहलोक की वस्तुओं को तिरस्कार के साथ देखें, और स्वभावत: किसी ऐसी वस्तु के दर्शन की चिर अभिलाषा उनके हृदय में अंकुरित होजाय जो अपरिवर्तनशील हो, जो अविनाशी हो, जो इस विनाशशील व दु:खपूर्ण जगत में अमर व नित्य आनन्दपूर्ण हो। प्राची के महापुरुष इन आदर्शों की घोषणा करते कभी नहीं थकते—और जहाँ तक महापुरुषों व अवतारों का प्रश्न है, आपको स्मरण होगा कि उनमें से सभी, बिना किसी अपवाद के प्राच्य-देशीय हैं।

इसलिये हम अपने आलोच्य महापुरुष, जीवन के इस दिव्य संदेशवाहक के जीवन का मूलमंत्र यही पाते हैं कि "यह जीवन कुछ नहीं है, इससे भी उच्च कुछ और है" और इस इन्द्रियातीत तत्व को अपने जीवन में परिणत कर उसने यह परिचय दिया है कि

वह प्राची का सच्चा पुत्र है। पाश्चात्य देशों के निवासी भी अपने कार्य-क्षेत्र में—सामरिक व राजनीतिक कार्यों के संचालनादि में अपनी दक्षता व व्यावहारिकता का परिचय देते हैं। शायद, पूर्व का निवासी इन सब कार्यों में इतना कर्तृत्वपूर्ण नहीं है, किन्तु अपने निज के क्षेत्र में वह भी कार्य-दक्ष है—अपने जीवन को अपने धर्म पर आधारित करने में उसने भी अपनी व्यवहार-कुशलता दिखाई है। यदि वह आज किसी दर्शन का प्रचार करता है, तो देखा जायेगा कि कल ही सैकड़ों नर-नारी अपने जीवन में उसकी उपलब्धि करने का जी-तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं। यदि कोई व्यक्ति उपदेश करता है कि एक पैर पर खड़े रहने से मुक्ति संभव है, तो उसे अल्पकाल में ही एक पैर पर खड़े होने वाले सैकड़ों अनुयायी मिल जायँगे। शायद आप इसे हास्यास्पद समझते हों, किन्तु आप यह स्मरण रखें कि इसके पीछे उनके जीवन का यह मूलमंत्र, उनका यह दर्शन विद्यमान है कि धर्म केवल विचार व मनन की वस्तु नहीं है, उसकी जीवन में उपलब्धि व परिणति की जानी चाहिये। पाश्चात्य देशों में मुक्ति के जो विविध उपाय निर्दिष्ट किये जाते हैं—वे केवल बौद्धिक कलाबाजियाँ मात्र हैं और कभी भी उन्हें कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न नहीं किया जाता है। पश्चिम में जो प्रचारक अच्छा वक्ता है, वही श्रेष्ठ धर्मोपदेष्टा मान लिया जाता है।

अतएव, हम देखते हैं कि प्रथमत: नाजरथनिवासी ईसा पूर्व की सच्ची संतान थे—धर्म के क्षेत्र में अत्यन्त व्यावहारिक थे। उन्हें इस नश्वर जगत व उसके क्षणभंगुर ऐश्वर्य में विश्वास नहीं

है। शास्त्र-वाक्यों को तोड़मरोड़ कर व्याख्या करने की, जो कि आजकल पाश्चात्य देशों में प्रथा सी होगई है, कोई आवश्यकता नहीं। शास्त्र-वाक्य कोई रबर से लचीले नहीं हैं कि उन्हें जिधर चाहो उधर खींचलो और मरोड़ लो। उनका एक ही अर्थ है और कितनी भी खींचातानी करने पर दूसरा अर्थ नहीं निकलेगा। धर्म को वर्तमानकालीन इन्द्रिय-सर्वस्वता का समर्थक बनाना बंद करदेना चाहिये। कम से कम हमें अपने प्रति तो सच्चे व अकपटी बनने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि हम आदर्श का अनुगमन नहीं कर सकते, तो अपनी दुर्बलता स्वीकार करलें पर उसे हीन न बनायें, उसे अपने उच्च धरातल से न गिरायें।

पश्चिम के लोग, ईसा के चरित्र के जो नित्य नये नये व विभिन्न विवेचन प्रकाशित कर रहे हैं, उनसे हृदय अवसन्न हो जाता है। इन वर्णनों से इस बात का लेश मात्र भी ज्ञान नहीं होता, कि ईसा क्या थे और क्या नहीं। एक उन्हें महान राजनीतिज्ञ बताता है, तो दूसरा कहता है ईसा एक बड़े युद्ध-विशारद सेनापति थे और तीसरा कहता है वे एक देशभक्त यहूदी थे। इन सब धारणाओं के लिये इन पुस्तकों में कोई आधार है? किसी महान धर्माचार्य के जीवन पर, स्वयं उसके अपने शब्दों से अच्छा और कौन भाष्य हो सकता है? स्वयं ईसा ने अपने विषय में कहा है: "लोमड़ियों व शृगालों के एक एक मांद होती है, नभचारी खगकुल अपने नीड़ में निवास करते हैं, पर मानवपुत्र (ईसा) के पास अपना सिर छिपाने के लिये कोई छत नहीं है।" ईसा स्वयं त्यागी व वैराग्य-

वान थे, इसलिये उनकी शिक्षा भी यही है कि वैराग्य व त्याग ही मुक्ति का एकमेव मार्ग है, इसके अतिरिक्त मुक्ति का और कोई पथ नहीं है। यदि हममें इस मार्ग पर अग्रसर होने की क्षमता नहीं है, तो हमें मुख में तृण धारणकर, विनीतभाव से अपनी यह दुर्बलता स्वीकार करलेनी चाहिये कि हममें अब भी 'मैं' और 'मेरे' के प्रति ममत्व है, हममें धन और ऐश्वर्य के प्रति आसक्ति है। हमें धिक्कार है कि हम यह सब स्वीकार न कर मानवता के उस महान आचार्य को लज्जित करते हैं। उसे पारिवारिक बंधन नहीं जकड़ सके। क्या आप सोचते हैं कि ईसा के मन में कोई सांसारिक सुख के भाव थे? क्या आप सोचते हैं कि यह महान ज्योति, यह अमानव, यह प्रत्यक्ष ईश्वर, पृथ्वी पर पशुओं का समधर्मी बनने के लिये अवतीर्ण हुआ? किन्तु फिर भी लोग उसके उपदेशों का अपनी इच्छानुसार अर्थ लगा कर प्रचार करते हैं। उन्हें देह-ज्ञान नहीं था—वे लिङ्गो-पाधिरहित विशुद्ध आत्मा थे। वे केवल अविकारी व शुद्ध आत्मा थे—देह से केवल उनका यही संपर्क था कि उसमें अवस्थित हो वे मानवजाति के कल्याण के लिये कार्य कर सकते थे। आत्मा लिङ्ग-विहीन है। विदेह आत्मा का देह व पाशव भाव से कोई सम्बन्ध नहीं होता। अवश्यमेव त्याग व वैराग्य का यह आदर्श साधारणजनों की पहुँच के बाहर है। कोई हर्ज नहीं, हमें अपना आदर्श नहीं विस्मृत करदेना चाहिये—उसकी प्राप्ति के लिये सतत यत्नशील रहना चाहिये। हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि त्याग हमारे जीवन का आदर्श है, किन्तु अद्यापि हम उस तक पहुँचने में असमर्थ हैं।

ईशदूत ईसा

मैं शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मा हूँ, इस तत्व की उपलब्धि के अतिरिक्त ईसा के जीवन में अन्य कोई कार्य न था, और कोई चिन्ता न थी। वे वास्तव में विदेह शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मा-स्वरूप थे। यही नहीं, उन्होंने अपनी दिव्य-दृष्टि से जानलिया था कि सभी नर-नारी, चाहे वे यहूदी हों या किसी अन्य इतर जाति के हों, दरिद्र हों या धनवान, साधु हों या पापात्मा, उनके ही समान अविनाशी आत्मा-स्वरूप हैं। इसलिये, उन्होंने अपना यह जीवन-कार्य बनालिया था कि वे संसारी पुरुषों को अपने अमर स्वरूप की पहचान करा दें, सारी मानवता को अपने शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यस्वरूप की उपलब्धि करने का आह्वान दे दें। उन्होंने कहा : यह अंधविश्वास भरी मिथ्या भावना छोड़ दो कि हम दीन हीन हैं। यह न सोचो कि तुम पर गुलामों के समान अत्याचार किया जारहा है, तुम पैरों तले रौंदे जारहे हो क्योंकि तुममें एक ऐसा तत्व विद्यमान है, जिसे पददलित व पीड़ित नहीं किया जासकता, जिसका विनाश नहीं हो सकता। तुम सब ईश्वर के पुत्र हो, अमर और अनादि हो। अपनी महान वाणी से ईसा ने जगत में घोषणा की, "दुनिया के लोगो, इस बात को भलीभाँति जान लो कि स्वर्ग का राज्य तुम्हारे अभ्यन्तर में अवस्थित है: मैं और मेरा पिता अभिन्न हैं। साहस कर खड़े होजाओ और घोषणा करो कि मैं केवल ईश्वरतनय ही नहीं, स्वयं ईश्वर हूँ, अपने हृदय में मुझे यह प्रतीति होगई है कि मैं और मेरा पिता एक और अभिन्न हैं।" नाजरथवासी ईसा मसीह में यह कहने का साहस था। उन्होंने इस संसार व इस देह के संबंध में कुछ न कहा। इन वस्तुओं से

उन्हें कोई प्रयोजन नहीं, संसार से केवल उनका यही सम्पर्क था कि संसार का यथार्थ स्वरूप समझकर, उसे उस पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा दें—जिस पर चलकर वह परम ज्योतिर्मय ईश्वर के निकट पहुँच जाय, जिस पर आगे बढ़ प्रत्येक व्यक्ति अपने यथार्थ स्वरूप को जान जाय, जिसका अवलंबन करने से संसार में मृत्यु का पराजय व दुःखों का अन्त होजाय।

ईसा के जीवन पर लिखी गई विभिन्न परस्पर विरोधी आख्यायिकायें हमने पढ़ी हैं। विद्वज्जनों की ग्रन्थावलियाँ व 'उच्चतर भाष्यादि' से भी हमारा परिचय है। इन सब आलोचनाओं द्वारा क्या सम्पादित किया गया है इससे भी हम अज्ञ नहीं हैं। हमें यहाँ इस विवाद में नहीं पड़ना है कि बाइबल के न्यू टेस्टामेंट का कितना अंश सत्य है या उसमें वर्णित ईसा मसीह का जीवन-चरित्र कहाँ तक ऐतिहासिक सत्य पर आधारित है। ईसा की पाँचवी शताब्दी तक न्यू टेस्टामेंट लिखा जाचुका था या नहीं और उसमें कितना सत्यांश है, इससे भी हमें कोई प्रयोजन नहीं। किन्तु इस सब लेखों का आधार एक ऐसी वस्तु है जो अवश्य सत्य है, अनुकरणीय है। मिथ्या प्रलाप करने के लिये भी हमें किसी सत्य की नकल करनी पड़ती है, और सत्य सदैव वास्तविकता पर आधारित रहता है। जिसका कभी कोई अस्तित्व ही नहीं था, उसका अनुकरण भी कैसा? जिसे किसीने कभी देखा नहीं, उसकी नकल कैसे होसकती है? इसलिये यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि न्यू टेस्टामेंट की कथायें कितनी ही अतिरञ्जित, अतिशयोक्ति-पूर्ण क्यों

न हों, उस कल्पना का अवश्य कोई आधार था—निश्चित ही उस युग में जगत में किसी महाशक्ति का आविर्भाव हुआ था, किसी महान आध्यात्मिक शक्ति का अपूर्व विकास हुआ था—और उसी की आज हम चर्चा कर रहे हैं। उस महाशक्ति के अस्तित्व में हमें कोई संदेह नहीं है, हमें इस संबंध में पण्डितवर्ग द्वारा की गई आलोचनाओं का भी कोई भय नहीं। यदि एक प्राच्यदेशीय के रूप में मैं नाजरथ-निवासी ईसा की उपासना करूँ, तो मेरे लिये ऐसा करने की केवल एक ही विधि है—और वह है उसकी ईश्वर के समान आराधना करना। उसकी अर्चना की और कोई विधि मैं नहीं जानता। क्या आप कहते हैं कि हमें इस प्रकार उसकी उपासना करने का अधिकार नहीं है? यदि हम ईसा को अपने ही हीन धरातल पर आसीन कर, उनके प्रति किञ्चित आदर-भाव प्रकट करने में ही अपने कर्तव्य की इति-श्री मान लेते हैं, तो फिर उपासना का प्रयोजन ही क्या रहगया? हमारे शास्त्र कहते हैं, "ये अनन्त-ज्योति के पुत्र, जिनमें ब्रह्म की ज्योति प्रकाशित है, जो स्वयं ब्रह्म-ज्योति-स्वरूप हैं—आराधित किये जाने पर, हमारे साथ तादात्म्य-भाव प्राप्त करलेते हैं, व हम भी उनके साथ एकत्व स्थापित करलेते हैं।"

क्योंकि, आपने लक्ष्य किया होगा कि मनुष्य तीन प्रकार से ईश्वरोपलब्धि कर सकते हैं। प्रथमावस्था में अविकसित मनुष्य की अपरिपक्व बुद्धि कल्पना करती है कि ईश्वर आकाश में बहुत ऊँचे, किसी स्वर्ग नामक स्थान में सिंहासनासीन हो, न्यायाधीश की भाँति

पाप-पुण्य का निर्णय करता है। लोग उसका 'महद्भयं वज्रमुद्यतं' के रूप में दर्शन करते हैं। ईश्वर की एवंविध भावना में भी कोई बुराई नहीं है। तुम्हें यह स्मरण रखना चाहिये की मानवता की गति सदैव एक सत्य से दूसरे सत्य की ओर रही है; असत्य से, भ्रम से, सत्य व यथार्थ की ओर नहीं; या यदि आप इसी भाव को अन्य शब्दों में व्यक्त करना पसंद करें—तो मानवता निम्नतर सत्य से उच्चतर सत्य की ओर प्रयाण करती है, असत्य से सत्य की ओर नहीं। कल्पना कीजिये कि आप एक सरल रेखा में पृथ्वी से सूर्य की ओर जारहे हैं। प्रथमतः आपको सूर्य एक लघु बिम्ब के समान दृष्टिगत होगा। किन्तु कई लक्ष कोस प्रयाण करने पर सूर्य का आकार दीर्घ से दीर्घतर होता जायगा। ज्यों ज्यों हम अग्रसर होते रहेंगे, त्यों त्यों सूर्य अधिकाधिक दीर्घाकार दिखने लगेगा। अब यदि यात्रा की भिन्न भिन्न अवस्थाओं से आप सूर्य के बीस हज़ार छाया-चित्र लें, तो वे अवश्य ही एक दूसरे से भिन्न होंगे। किन्तु क्या आप यह नहीं कहेंगे कि वे एक ही वस्तु—एक ही सूर्य के छायाचित्र नहीं हैं? इसी प्रकार भिन्न भिन्न धर्म, चाहे वे उच्चतम हों या निम्नतम, उस अनन्त ज्योतिर्मय परमेश्वर की ओर मानवता के प्रयाण की भिन्न भिन्न अवस्थायें मात्र हैं। उनमें केवल यही भेद है कि किसीमें ईश्वर की निम्नतर धारणा की गई है और किसी में उच्चतर। इसलिये संसार की अविकसित बुद्धियुक्त साधारण जातियों के धर्मों में सदैव ही एक ऐसे ईश्वर की कल्पना की गई है, जो भौतिक विश्व की परिधि के बाहर, स्वर्गनामक स्थान में निवास करता है, वहीं से

संसारचक्र की गति-विधि पर नियंत्रण करता है, और पापपुण्य का न्याय कर मनुष्यों को दण्ड व पुरस्कार वितरित करता है। ज्यों ज्यों मनुष्य आध्यात्मिक प्रगति करता गया, त्यों त्यों उसे यह प्रतीत होने लगा कि ईश्वर सर्वव्यापी है, सारे अग-जग, सर्व चराचर में उसकी ज्योति प्रवाहित होरहा है, उसमें खुद में भी उसी ईश्वर का निवास है। उसे भास होने लगा कि ईश्वर सब आत्माओं की अन्तरात्मा है और उनसे दूर अवस्थित नहीं है। जिस प्रकार मेरी आत्मा मेरे देह का परिचालन करती है, वैसे ही ईश्वर मेरी आत्मा का संचालन करता है, मेरी आत्मा में विद्यमान अन्तरात्मा है। कतिपय व्यक्तियों ने, जो शुद्ध थे—अपनी चिन्तन-शक्ति द्वारा, अपनी साधना की सहायता से, इतनी प्रगति करली, कि वे पूर्वोक्त धारणा का अतिक्रम कर, स्वयं ईश्वर की उपलब्धि करने में सफल होगये। जैसा कि न्यू टेस्टामेंट में कहागया है, "ये शुद्ध-हृदय व्यक्ति धन्य हैं, क्योंकि इन्हें परमेश्वर के दर्शन हो सकेंगे।" और उन्हें अन्त में इस तत्व की उपलब्धि होसकी कि वे और उनका पिता एक है, उनमें द्वैत और भेद नहीं।

आप देखेंगे कि न्यू टेस्टामेंट में मानवता के उस महान आचार्य ने भी ईश्वर-प्राप्ति की इस सोपान-त्रयी की ही शिक्षा दी है। उसने जिस सार्वजनिक प्रार्थना (Common Prayer) की शिक्षा दी है, उसकी ओर लक्ष्य कीजिये : हे मेरे स्वर्ग-निवासी पिता, तेरा नाम सदैव जययुक्त व प्रकाशमान रहे, इत्यादि। यह सरल-भावना-युक्त प्रार्थना है, एक शिशु की प्रार्थना जैसी है। देखिये यह साधारण

सार्वजनिक प्रार्थना है, क्योंकि यह अशिक्षित, जनसाधारण के लिये है। अपेक्षाकृत उच्चतर व्यक्तियों के लिये, जो साधनामार्ग में किञ्चित् अधिक अग्रसर होगये थे, ईसा ने अपेक्षाकृत उच्च साधना का उपदेश दिया है : मैं अपने पिता में वर्तमान हूँ, तुम मुझमें वर्तमान हो व मैं तुममें वर्तमान हूँ। क्या तुम्हें याद है यह? और फिर जब यहूदियों ने ईसा से पूछा था—"तुम कौन हो" तो ईसा ने अपनी महान वाणी में घोषणा की "मैं और मेरा पिता एक हैं।" यहूदियों ने सोचा यह धर्म की घोर निन्दा है, भगवान का घोर अपमान है। पर ईसा के कथन का अर्थ क्या था? यह भी तुम्हारे पैगम्बर स्पष्ट करगये हैं: "तुम सब देवगण हो, तुम सब उस परात्पर पुरुष की सन्तान हो।" देखिये, बाइबल में भी इस त्रिविध सोपान का उपदेश है। तुम देखोगे कि प्रथमावस्था से आरंभ करने की अपेक्षा अन्तिम अवस्था अधिक सरलता से प्राप्त की जा सकती है।

ईश्वर के अग्रदूत, परम ज्ञानज्योति के संदेश-वाहक ईसा सत्योपलब्धि का मार्ग प्रदर्शित करने अवतीर्ण हुये थे। उन्होंने हमें बताया कि नानाविध धार्मिक क्रियाकलाप, अनुष्ठानादि से आत्म-तत्व प्राप्त नहीं किया जासकता; उन्होंने बताया कि गूढ़, दार्शनिक तर्क-वितर्कों से आत्म-तत्व की प्राप्ति नहीं होगी। अच्छा होता यदि तुम कोई पुस्तक न पढ़ते, अच्छा होता यदि तुम विद्या-हीन होते। मुक्ति के लिये इन उपकरणों की आवश्यकता नहीं है, उसके लिये धन, ऐश्वर्य और उच्च पद की ज़रूरत नहीं। उसके लिये केवल एक वस्तु की आवश्यकता है—और वह है शुद्धता। "शुद्ध-हृदय पुरुष धन्य

हैं" क्योंकि आत्मा स्वयं शुद्ध है। और अन्यथा हो भी कैसे सकता है! ईश्वर से ही उसका आविर्भाव हुआ है, वह ईश्वर-प्रसूत है। बाइबल के शब्दों में वह "ईश्वर का निःश्वास है।" कुरान की भाषा में "वह ईश्वर की आत्मा-स्वरूप है।" क्या आप कहते हैं कि ईश्वरात्मा कभी अशुद्ध और विकारपूर्ण नहीं होसकती? काश कि वह कभी अशुद्ध न होसकती! किन्तु दुर्भाग्य से हमारे शुभाशुभ कार्यों के कारण वह सदियों के मल, सैकड़ों वर्षों की अशुद्धि और धूलि से आवृत है; हमारे नानाविध दुष्कर्म, नानाविध अन्याय कार्य शत शत वर्षों से अज्ञान रूपी धूलि व मलीनता द्वारा उसके प्रकाश को मन्द कररहे हैं। केवल इस धूलि और मैल की तह को उस पर से पोंछने भर की देर है, आत्मा पुनः अपनी उज्ज्वल व दिव्य प्रभा से प्रकाशित होजायगी। शुद्ध-हृदय व्यक्ति धन्य हैं, क्योंकि उनके लिये ईशदर्शन सुलभ है। महान स्वर्गराज्य हमारे ही अन्तर में विराजमान है।" और इसीलिये नाजरथ का वह महान पैगम्बर पूछता है, "जब स्वर्ग तुम्हारे अन्तर में विराजमान है, तो उसे ढूँढ़ने अन्यत्र कहाँ जारहे हो?" अपनी आत्मा को माँज-पोंछ कर साफ करो, मलीनता का अपसारण करो, अपने दुष्कृत्यों, अपने पापों का प्रायश्चित्त व प्रक्षालन करो, तुम्हें अवश्य उनके दर्शन होंगे, अवश्य तुम्हें अपनी ही आत्मा में वह विशाल स्वर्ग-राज्य दृष्टिगत होगा। तुम उसके आजन्म अधिकारी हो। यदि उस पर तुम्हारा स्वत्व नहीं है, तो तुम कैसे उसे पासकते हो? तुम अमरता के अधिकारी हो, तुम उस नित्य, सनातन पिता की सन्तान हो, स्वर्गराज्य तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।

यह है उस महान संदेश-वाहक की महान शिक्षा। उसकी दूसरी शिक्षा है त्याग—जो प्राय: सभी धर्मों का आधार है। आत्म-शुद्धि कैसे प्राप्त की जा सकती है? त्याग द्वारा। एक धनी युवक ने एक बार ईसा से पूछा, "प्रभो, अनन्त जीवन की प्राप्ति के लिये मैं क्या करूँ?" ईसा बोले, "तुममें एक बड़ा अभाव है। यहाँ से घर जाकर अपनी सारी सम्पत्ति बेच दो, जो धन प्राप्त हो—उसे गरीबों को दान कर दो। तुम्हें स्वर्ग में अक्षय धन-सम्पदा प्राप्त होगी। उसके बाद 'क्रॉस' धारण कर मेरा अनुगमन करो।" धनी युवक यह सुन कर अत्यन्त उदास होगया व दु:खी होकर चलागया, क्योंकि अपनी अपार सम्पत्ति का मोह वह नहीं त्याग सकता था। हम सब न्यूनाधिक अंशों में उसी युवक के समान हैं। रातदिन हमारे कानों में यही महावाणी ध्वनित होती रहती है। हमारे आनन्द के क्षणों में, साँसारिक विषयोपभोग में हम जीवन के सब उच्चतर आदर्श भूल जाते हैं; पर इस अनवरत व्यापार में जब कभी क्षण-भर का विराम आता है, हमारे कानों में वही महाध्वनि गूंजने लगती है, "अपना सर्वस्व त्यागकर मेरा अनुसरण करो। जो अपनी जीवन-रक्षा का प्रयत्न करेगा, वह उसे खो देगा, और जो मेरे लिये अपना जीवन खोयेगा, वह उसे पा लेगा।" जो भी अपना जीवन उसे समर्पित करदेगा, वही अनन्त जीवन का अधिकारी बन सकेगा, उसे ही अमरता वरण करेगी। हमारी दुर्बलताओं के बीच जीवन के अजस्र प्रवाह में—कहीं से एक क्षण का विराम आ उपस्थित होजाता है और पुन: उस महावाणी की घोषणा हमारे कानों में होना शुरू हो

जाती है : "अपना सर्वस्व त्याग कर दो, उसे गरीबों को बाँट दो और मेरा अनुगमन करो !"

स्वार्थ-शून्यता, निस्पृहता, त्याग—यही एक आदर्श है जिसकी ईसामसीह ने शिक्षा दी है—जिसका दुनिया के सभी पैगम्बरों ने प्रचार किया है। इस त्याग का क्या तात्पर्य है? त्याग का मर्म केवल यही है कि निस्पृहता, निःस्वार्थपरता ही नैतिकता का उच्चतम आदर्श है। अहंशून्य बनो। पूर्ण निःस्वार्थपरता—पूर्ण अहंशून्यता ही हमारा आदर्श है। और इसका दृष्टान्त है ईसा का यह वाक्य : यदि किसी ने तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मार दिया है, तो दूसरा गाल भी उसकी ओर करदो। यदि किसी ने तुम्हारा कोट छीन लिया है, तो तुम उसे अपना चोगा भी देदो।

आदर्श को अपने उच्च-धरातल से नीचा न करते हुए हमें उसे प्राप्त करने का यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये। और वह आदर्श अवस्था यह है : जिस अवस्था में मनुष्य का अहंभाव पूर्णतया नष्ट होजाता है, उसका स्वत्व भाव लुप्त होजाता है, जब उसके लिये ऐसी कोई वस्तु नहीं रहजाती जिसे वह 'मैं' और 'मेरी' कह सके, जब वह संपूर्णतया आत्मविसर्जन कर देता है—अपनी आहुति दे देता है—इस प्रकार अवस्थापन्न व्यक्ति के अंतर में स्वयं ईश्वर निवास करते हैं, क्योंकि ऐसे व्यक्ति की वासनायें नष्ट होजाती हैं, संयमाग्नि में जलकर खाक होजाती हैं, निर्बल होकर उसे छोड़ देती हैं। यह है हमारा आदर्श और यद्यपि इस आदर्शावस्था को हम अद्यापि प्राप्त नहीं कर सकते, तथापि हमें, स्खलित पदों से ही क्यों न हो, उस

ओर शनैः शनैः अग्रसर होते रहना चाहिये। आज, कल या आज के सहस्रों वर्ष के बाद—हमें उस आदर्श को प्राप्त करना है, क्योंकि यह आदर्शावस्था हमारी साधना का अन्त ही नहीं—हमारी साधना का मार्ग भी है। निःस्वार्थपरता, पूर्ण अहंशून्यता साक्षात् मुक्ति है, क्योंकि अहंशून्य होने पर भीतर का व्यक्ति मर जाता है, और केवल ईश्वर अवशिष्ट रह जाता है।

एक बात और है। मानवता के सभी महान आचार्य अहंशून्य हैं। कल्पना कीजिये कि नाजरथ के ईसा उपदेश दे रहे हैं—और इसी बीच कोई व्यक्ति उठ कर पूछने लगता है, "आपका उपदेश बहुत सुन्दर है, मेरा विश्वास है कि पूर्णत्व-प्राप्ति का यही एक मार्ग है और मैं उसका अनुसरण करने को भी प्रस्तुत हूँ, किन्तु मैं आपकी ईश्वर के एकमात्र उत्पन्न पुत्र के रूप में उपासना नहीं कर सकता।" ईसा मसीह के पास इसका क्या उत्तर होगा—ज़रा सोचिये। शायद ईसा उस व्यक्ति से कहते, "अच्छा, भाई, आदर्श का अनुसरण कर अपनी इच्छानुसार उस ओर प्रगति करो। तुम मुझे मेरे उपदेशों के लिये कोई श्रेय दो या न दो—मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। मैं कोई दूकानदार नहीं हूँ, बनिया नहीं हूँ। मैं धर्म का व्यवसाय नहीं करता। मैं केवल सत्य की शिक्षा देता हूँ—और सत्य किसी की बपौती—किसी की जायदाद नहीं है। सत्य पर किसी का एकाधिपत्य नहीं है। सत्य स्वयं ईश्वर है। तुम अपने मार्ग पर अग्रसर होते जाओ।" पर आज ईसा के अनुयायी उसी प्रश्न का यह जबाब देते हैं, "तुम इन उपदेशों पर, इन उसूलों पर अमल करो

या न करो, इससे हमें कोई मतलब नहीं, पर तुम उपदेशक का सम्मान तो करते हो न? यदि तुम उपदेशक का सम्मान करते हो तो अवश्य ही तुम्हारा उद्धार हो जायगा, यदि नहीं, तो तुम्हारी मुक्ति की कोई आशा नहीं।" इस प्रकार उस महापुरुष की सारी शिक्षाओं को विकृत स्वरूप दे दिया गया है। सारे विवाद, सारे झगड़े, केवल उपदेशक के व्यक्तित्व को लेकर खड़े होते हैं। ये नहीं जानते कि उपदेशक और उपदेश में इस प्रकार का भेद आरोपित कर वे उसी व्यक्ति को लांछित व अपमानित कर रहे हैं जो उनका आदरणीय व पूजार्ह है, जो स्वयं इस प्रकार का विचार सुनकर लज्जा से संकुचित हो जाता। संसार में कोई उसे स्मरण करते है या नहीं इसकी उस महापुरुष को क्या परवाह थी? उसे तो विश्व को एक संदेश देना था—और वह उसने दे दिया। इसके बाद यदि उसे बीस सहस्र जीवन भी प्राप्त होते तो उन्हें वह दुनिया के गरीब से गरीब आदमी के लिये भी निछावर कर देता। यदि लक्ष लक्ष घृणार्ह 'समारिया'वासियों के उद्धार के लिये, उसे करोड़ों बार करोड़ों यातनायें भी सहनी पड़तीं; यदि उनमें से एक एक की मुक्ति के लिये उसे अपने जीवन की भी आहुति देनी पड़ती, तो वह सहर्ष यह सब अंगीकार कर लेता। और यह सब करते हुए—उसे यह इच्छा छू भी न पाती कि मृत्यु के बाद दुनिया में कोई उसे याद करे। स्वयं ईश्वर जिस प्रकार कार्य करता है, वह भी उसी प्रकार शान्त, स्थिर, नीरव और अज्ञातरूप में अपना कार्य करता। लेकिन, इसके अनुयायी क्या कहते हैं? वे

कहते हैं—तुम पूर्ण निःस्वार्थ और दोष-रहित ही क्यों न हों, जब तक तुम हमारे पैगम्बर, हमारे धर्माचार्य की पूजा और उसका सम्मान नहीं करोगे, तुम्हारा उद्धार नहीं होगा। पर यह क्यों? इस अंधविश्वास, इस अज्ञान का कारण क्या है—इसकी उपपत्ति कहाँ से हुई? इसका एकमात्र कारण यही हो सकता है कि ईसा के शिष्यगण सोचते हैं—ईश्वर केवल एक ही बार अवतीर्ण हो सकता है। किन्तु यही विचार सब कुसंस्कारों, सब भ्रमों की जड़ है। ईश्वर मानवरूप में तुम्हारे सामने प्रकट हुआ है। किन्तु प्राकृतिक जगत में जो घटनायें होती हैं, वे अवश्यमेव भूतकाल में भी हुई हैं और भविष्य में भी होंगी। प्रकृति में ऐसी कोई घटना नहीं है जो नियमाधीन नहीं है। उसके नियमबद्ध होने का अर्थ केवल यही है कि जो घटना एक बार हुई है वह कुछ परिस्थितियों के विद्यमान होने पर, भविष्य में भी होगी व भूतकाल में भी होती रही है।

भारतवर्ष में ईश्वरावतार के संबंध में यही सिद्धान्त प्रचलित है। भारतीयों के अन्यतम अवतार, श्रीकृष्ण ने, जिनकी भगवद्गीता-स्वरूप अपूर्व उपदेश-माला आपने पढ़ी होगी, कहा है :—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

अर्थात् यद्यपि मै जन्मरहित, अक्षय-स्वभाव व इस भूत-समूह का ईश्वर हूँ, तथापि मैं अपनी प्रकृति का अधिष्ठान कर, अपनी माया से जन्म-ग्रहण करता हूँ। हे अर्जुन! जब जब धर्म की अवनति व अधर्म का उत्थान होता है, तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ। साधु-जन के परित्राणार्थ, दुष्कार्य-रत व्यक्तियों के विनाशार्थ व धर्म की संस्थापना के लिये मैं प्रत्येक युग में जन्म-ग्रहण करता हूँ।" जब संसार की अवनति होने लगती है, तो भगवान उसकी सहायता करने को अवतार लेते हैं, इस प्रकार वे विभिन्न स्थानों व विभिन्न युगों में आविर्भूत होते रहे हैं। दूसरे एक स्थान में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥

"जहाँ कहीं किसी असाधारण-शक्तिसम्पन्न व पवित्र आत्मा को मानवता के उत्थान के लिये यत्नशील देखो, तो यह जान लो कि वह मेरे ही तेज से उत्पन्न हुआ है, मैं ही उसके माध्यम से कार्य कर रहा हूँ।

इसलिये हमें केवल नाजरथवासी ईसा को ही ईश्वर का पुत्र व अवतार न मानकर, विश्व के सभी महान आचार्यों व पैगम्बरों को भी यही सम्मान देना चाहिये जो ईसा के पहले जन्म ले चुके थे, जो ईसा के पश्चात् आविर्भूत हुए हैं और जो भविष्य में अवतार ग्रहण करेंगे! हमारा सम्मान और हमारी पूजा सीमाबद्ध नहीं है। ये सब महापुरुष एक ही अनन्त शक्ति—एक ही ईश्वर की अभिव्यक्ति हैं। वे सब शुद्ध और अहं-शून्य हैं, सभीने इस दुर्बल

मानवजाति के उद्धार के लिये प्राणपण से प्रयत्न किया है, इसी के लिये जीये और मरे हैं। वे हमारे और हमारी आनेवाली संतान के—सब के पापों को ग्रहण कर उनका प्रायश्चित्त कर गये हैं।

एक प्रकार से हम सभी अवतार हैं, सब अपने कंधों पर संसार का भार वहन कर रहे हैं! क्या तुमने कोई ऐसा व्यक्ति देखा है—ऐसी कोई स्त्री देखी है—जो धैर्यपूर्वक, शान्ति से अपने लघु संसार, अपने जीवन का लघु भार न वहन कर रही हो? ये महान अवतार हमारी तुलना में अवश्य विशालकाय थे, और इसलिये वे अपने कंधों पर इस महान जगत का भार उठाने में भी सफल हो सके। अवश्य उनसे तुलना करने पर हम अतिक्षुद्र और बौने प्रतीत होते हैं, किन्तु हम भी वही कार्य कर रहे हैं—हम भी अपने छोटे छोटे घरों में, अपने छोटे संसार में, अपनी छोटी छोटी दुख-सुख की गठरियाँ सिर पर रख अग्रसर होरहे हैं। कोई इतना क्षुद्रपदार्थ नहीं है, कोई इतना हीन नहीं है—जो अपना भार स्वयं नहीं वहन करता। हमारी सब भ्रान्तियों, सब दुष्कृतियों, हमारे सब हीन व गर्हित विचारों के लाञ्छन व अपवाद की कालिमा के बावजूद भी, हमारे चरित्र में एक उज्ज्वल अंश है, कहीं न कहीं एक ऐसा सुवर्ण-सूत्र है, जिसके द्वारा हम सदैव भगवान से संयुक्त रहते हैं। कारण, यह निश्चय ही जानो कि जिस क्षण भगवान के साथ हमारा यह संयोग नष्ट हो जायगा, उसी क्षण इस जगत् का विनाश हो जायगा। और चूँकि कभी भी किसीका संपूर्ण नाश होना असंभव है, हम कितने ही हीन, पतित व दुष्कर्मरत क्यों न हों, कहीं न कहीं हमारे हृदय में—

हमारे अन्तर के अन्तर्तम प्रदेश में एक ज्योति की किरण विराजमान है जो सदैव हमारा ईश्वर से संयोग बनाये रखती है।

विभिन्नदेशीय, विभिन्नजातीय व विभिन्न-मतावलम्बी, भूतकाल के उन सब महापुरुषों को हम प्रणाम करते हैं — जिनके उपदेश और चरित्र हमने उत्तराधिकार में पाये हैं। विभिन्न जातियों, देशों व धर्मों में जो देवतुल्य नर-नारि-गण, मानवता के कल्याण में रत हैं, उन सब को प्रणाम है। जीवन्त ईश्वरस्वरूप, जो महापुरुष भविष्य में हमारी संतान के लिये निस्पृहता से कार्य करने के लिये अवतार धारण करेंगे उन सब को प्रणाम है।

हमारे अन्य प्रकाशन

हिन्दी विभाग

१-३. **श्रीरामकृष्णवचनामृत**–तीन भागों में–अनु० पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; प्रथम भाग (द्वितीय संस्करण)— मूल्य ६); द्वितीय भाग—मूल्य ६); तृतीय भाग–मूल्य ७॥)

४-५. **श्रीरामकृष्णलीलामृत**—(विस्तृत जीवनी)— (द्वितीय संस्करण)– दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य ... ... ५)

६. **विवेकानन्द-चरित**–(विस्तृत जीवनी)–सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, मूल्य ६)

७. **विवेकानन्दजी के संग में**–(वार्तालाप)–शिष्य शरचन्द्र, मूल्य ५।)

स्वामी विवेकानन्द कृत पुस्तकें

८. **भारत में विवेकानन्द**–(विवेकानन्दजी के भारतीय व्याख्यान) ५)

९. **पत्रावली प्रथम भाग**) (प्रथम संस्करण) २=)

१०. **धर्मविज्ञान** (प्रथम संस्करण) १॥=)

११. **कर्मयोग** (प्रथम संस्करण) १॥=)

१२. **हिन्दू धर्म** (प्रथम संस्करण) १॥)

१३. **प्रेमयोग** (द्वितीय संस्करण) १।=)

१४. **भक्तियोग** (द्वितीय संस्करण) १।=)

१५. **आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग** (तृतीय संस्करण) १।)

१६. **परिव्राजक** (तृतीय संस्करण) १।)

१७. **प्राच्य और पाश्चात्य** (तृतीय संस्करण) १।)

१८. **विवेकानन्दजी की कथायें** (प्रथम संस्करण) १।)

१९. **महापुरुषों की जीवनगाथायें** ,, १।)

२०. **राजयोग** (प्रथम संस्करण) १=)

२१. **स्वाधीन भारत ! जय हो !** (प्रथम संस्करण) १=)

२२. **धर्मरहस्य** (प्रथम संस्करण) १)

२३. **भारतीय नारी** (प्रथम संस्करण) ॥।)

२४. **शिक्षा** (प्रथम संस्करण) ॥=)

२५. **शिकागो वक्तृता** (पञ्चम संस्करण) ॥=)
२६. **हिन्दू धर्म के पक्ष में** (प्रथम संस्करण) ॥=)
२७. **मेरे गुरुदेव** (चतुर्थ संस्करण) ॥=)
२८. **वर्तमान भारत** (तृतीय संस्करण) ॥)
२९. **पवहारी बाबा** (प्रथम संस्करण) ॥)
३०. **मेरा जीवन तथा ध्येय** (प्रथम संस्करण) ॥)
३१. **मरणोत्तर जीवन** (प्रथम संस्करण) ॥)
३२. **मन की शक्तियाँ तथा जीवनगठन की साधनायें** ॥)
३३. **भगवान रामकृष्ण धर्म तथा संघ**—स्वामी विवेकानन्द, स्वामी शारदानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी शिवानन्द; मूल्य ॥=)
३४. **मेरी समर-नीति** (प्रथम संस्करण) ।≡)
३५. **परमार्थ-प्रसंग**—स्वामी विरजानन्द, (आर्ट पेपर पर छपी हुई)
कपड़े की जिल्द, मूल्य ३॥)
कार्डबोर्ड की जिल्द, ,, ३।)

मराठी विभाग

१-२. **श्रीरामकृष्ण-चरित्र**—प्रथम भाग (तृतीय संस्करण), द्वितीय भाग, (द्वितीय संस्करण) छापत आहे.
३. **श्रीरामकृष्ण-वाक्सुधा** — (द्वितीय संस्करण) ॥।=)
४. **शिकागो-व्याख्यानें**—स्वामी विवेकानंद ॥=)
५. **माझे गुरुदेव** — (द्वितीय संस्करण)—स्वामी विवेकानंद ॥=)
६. **हिंदु-धर्माचें नव-जागरण** — स्वामी विवेकानंद ॥-)
७. **पवहारी बाबा** — स्वामी विवेकानंद ॥)

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर-१, मध्यप्रान्त

मूल्य ६ आ.